उन्नत शिक्षा अध्ययन संस्थान

बिलासपुर विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)

Two Year B.Ed. Course

B.Ed. 2nd Year

Educational Studies

Course 011

Curriculum and Knowledge

Unit 4

Curriculum and Productive Work

a. Understanding work as a productive activity which aims at producing tangible goods or services. Changing nature of work in recent times. Is 'work' incompatible with education?

b. Gandhian notion of education through productive work and a review of experience of its actual implementation. Can we substitute traditional crafts with modern industrial work? From Gandhian notion to 'Socially useful productive work' (SUPW).

c. Vocational Education: education as preparation for a particular field of employment.

d. Visioning - human beings and just society, the role of students and teachers, the nature of knowledge and learning, the role of assessment and evaluation in education.

समाजोपयोगी उत्पादक कार्य का अर्थ
(Meaning of Socially Useful Productive Work)

व्यवसाय के प्रति निष्ठा उत्पन्न करने के लिए कोठारी आयोग ने भी समाजोपयोगी उत्पादक कार्य की संकल्पना प्रस्तुत की है। इसका मूल आधार है—विद्यार्जन तथा धनार्जन की प्रक्रिया को साथ-साथ सम्पन्न करना। वास्तविकता यह है कि इनके माध्यम से श्रम तथा कर्त्तव्य के प्रति निष्ठा का दृष्टिकोण विकसित होता है जिससे छात्रों को वयस्क होने पर अपने जीवनयापन में सहायता मिलती है।

आर्थिक सम्पन्नता हेतु व्यावसायिक शिक्षा के लिए समाजोपयोगी उत्पादक कार्य शिक्षा एक सम्बल प्रदान करती है। कोठारी आयोग के अनुसार इसमें निम्नलिखित उद्देश्य विद्यमान हैं—

1. रोजगार एवं शिक्षा का सीधा सम्बन्ध होना।
2. व्यक्ति को जीवनयापन के लिए कार्यालयों की अपेक्षा अपने हाथों पर निर्भर रहना।
3. जन-शक्ति का उपयोग कर देश की आर्थिक स्थिति को सुधारना।
4. शिक्षा की सोद्देश्यता का दृष्टिकोण विकसित करना और विद्यार्थियों को आभास कराना कि राष्ट्र निर्माण के लिए उनकी आवश्यकता है।
5. भारतीय परिस्थितियों एवं स्रोतों का उचित उपयोग किया जाना।

माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम एवं पाठ्य-पुस्तकों पर सुझाव देने हेतु **ईश्वर भाई पटेल** (1997) समिति का गठन किया गया। समिति ने समाजोपयोगी कार्य को नवीन सन्दर्भ में सोच-विचारकर समाजोपयोगी उत्पादक कार्य एवं समाज-सेवा को प्रस्तुत किया। समिति ने अपनी महत्वपूर्ण अनुशंसाओं में इस बात पर बल दिया कि विद्यालय शिक्षा के सभी स्तरों पर शिक्षाक्रम में समाजोपयोगी उत्पादक कार्य को केन्द्रीय स्थान दिया जाये।

औद्योगिक परिदृश्य में उत्पादित कार्य की उपादेयता—औद्योगिक परिदृश्य में उत्पादित कार्य की उपादेयता निम्नलिखित हैं—

1. कृषि एवं उद्यान शिक्षण—जब से मानव ने जन्म लिया, कृषि तथा फलोत्पादन का प्रारम्भ हो गया। विश्व के प्रत्येक देश में फलों एवं फसलों का उत्पादन होता है। पृथ्वी के प्रारम्भ में आदिमानव कन्दमूल एवं फल खाकर ही अपना पेट भरता था। उस समय मानव असभ्य था और वैज्ञानिक रीति से कृषि-कार्य नहीं करता था। हमारे पुराने ग्रन्थों में विभिन्न प्रकार की फसलों का वर्णन मिलता है। ग्रन्थों के निर्माण काल तक मानव सभ्यता विकसित हुई तथा वह विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों की खेती करने लगा। मुगलकाल में विभिन्न देशों से विविध प्रकार के पौधे लाकर भारतवर्ष में लगाये गये। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति विश्व में सबसे प्राचीन है इसलिए सर्वप्रथम कृषि एवं उद्यानों का विकास भारतवर्ष में ही हुआ। भारतीय आर्थिक विकास कृषि पर ही निर्भर है।

उपयोगिता—कृषि एवं उद्यान की निम्नलिखित उपयोगिताएँ हैं—

1. कृषि के द्वारा मानव को भोज्य पदार्थ एवं पशुओं के लिए चारा मिलता है।
2. उद्यानों के माध्यम से फल-फूल, सब्जियाँ मिलती हैं।
3. भवन एवं फर्नीचर निर्माण के लिए उपयोगी लकड़ी मिलती है।
4. उद्यानों से विभिन्न प्रकार की जड़ी-बूटियाँ प्राप्त होती हैं जो रोगों को दूर करने में सहायता करती हैं।
5. विभिन्न प्रकार के उद्यानों में ही पक्षी निवास करते हैं।

2. काष्ठ शिल्प–काष्ठ शिल्प का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में लकड़ी का प्रयोग होता है। भवन निर्माण एवं फर्नीचर निर्माण में सर्वाधिक लकड़ी का प्रयोग होता है। प्राचीन काल में मानव को लकड़ी के बारे में ज्ञान होने के बाद उसने लकड़ी के हथियारों को बनाने का कार्य प्रारम्भ किया। विविध प्रकार की लकड़ियों का प्रयोग विभिन्न प्रकार के कार्यों में किया जाता है।

उपयोगिता–काष्ठ प्रयोग की उपयोगिता निम्नलिखित प्रकार है–

1. ईंधन के रूप में अनुपयोगी लकड़ी का प्रयोग किया जाता है।
2. लकड़ी का प्रयोग भवन निर्माण एवं फर्नीचर निर्माण में किया जाता है।
3. लकड़ी के प्रयोग से सजावटी वस्तुओं का निर्माण होता है।
4. कारखाने में औजारों के हत्थे बनाने के लिए लकड़ी का प्रयोग किया जाता है।

3. ग्रन्थ शिल्प–ग्रन्थ शिल्प का इतिहास अत्यधिक प्राचीन है। प्राचीन काल से ही ग्रन्थों का निर्माण होता आया है। विद्यार्थी जीवन में हम सभी का सम्बन्ध पुस्तकों से रहता है। आधुनिक युग में ग्रन्थ शिल्प को पुस्तक शिल्प (कला) के नाम से भी जाना जाता है।

उपयोगिता–ग्रन्थ शिल्प की उपयोगिता निम्नलिखित है–

1. ग्रन्थ शिल्प के माध्यम से विद्यार्थियों को पुस्तकें प्राप्त होती हैं।
2. दफ्ती एवं विभिन्न प्रकार के कागजों के माध्यम से उपयोगी वस्तुएँ बनाना ग्रन्थ शिल्प के अन्तर्गत ही आता है।
3. समाचार-पत्र के माध्यम से सम्पूर्ण विश्व की जानकारी प्राप्त होती है।
4. विभिन्न प्रकार के कागजों का प्रयोग करके सजावटी वस्तुओं का निर्माण किया जाता है।

4. कताई-बुनाई–संसार में प्राचीन सभ्यता के बाद से कताई-बुनाई का कार्य प्रारम्भ हुआ होगा। समय के साथ मानव सभ्यता का विकास हुआ और उसने वस्त्रों का निर्माण प्रारम्भ किया गया। प्राचीन काल में मानव हाथ एवं चरखे से बुनकर वस्त्रों का निर्माण करता था। आधुनिक युग विज्ञान का युग है इसलिए अब वस्त्रों का निर्माण मशीनों से किया जाता है। कताई-बुनाई शिल्प के शुभारम्भ का श्रेय भारतवर्ष को ही जाता है। ढाका में सबसे अच्छा सूत काता एवं बुना जाता है।

उपयोगिता–कताई-बुनाई शिल्प की उपयोगिता निम्नलिखित प्रकार है–

1. कताई द्वारा विभिन्न प्रकार के धाग बनाये जाते हैं।
2. कताई-बुनाई द्वारा विभिन्न प्रकार के सुन्दर वस्त्र बनाये जाते हैं।
3. बुनाई द्वारा उत्तम गुणवत्तायुक्त वस्त्र बनाये जाते हैं।
4. विभिन्न रंगों में धागों से आकर्षक वस्त्र बनाये जाते हैं।

5. चर्म शिल्प–प्राचीन काल में मानव पशुओं का शिकार करके उनके माँस को भोजन में तथा उनकी खाल को शरीर ढकने में प्रयोग करता था। सभ्यता के विकास के साथ-साथ पशुओं की खाल को विभिन्न प्रकार के कार्यों में प्रयोग करने लगा तभी चर्म शिल्प का शुभारम्भ हुआ।

आधुनिक युग में चमड़े का प्रयोग विभिन्न प्रकार के कार्यों में होने लगा है। आजकल चर्म शिल्प एक उद्योग के रूप में विकसित हो चुका है। इसे हस्तशिल्प के रूप में भी स्वीकार किया जाने लगा है।

उपयोगिता–चर्म शिल्प की उपयोगिता निम्नलिखित प्रकार है–

1. चमड़े से जूता बनाया जाता है।
2. चमड़े से सर्दियों के लिए कपड़े बनाये जाते हैं।
3. चमड़े से बैल्ट एवं बैग बनते हैं।
4. इसको काष्ठ शिल्प एवं कारखानों में प्रयोग किया जाता है।

6. धातु शिल्प–इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की धातुओं के माध्यम से उपयोगी वस्तुओं का निर्माण किया जाता है। वर्तमान समय में धातुओं से सम्बन्धित उत्पाद कारखानों में ही निर्मित होते हैं।

उपयोगिता–धातु शिल्प की उपयोगिता निम्न प्रकार हैं–

1. धातुओं से भोजन करने के बर्तन निर्मित होते हैं।
2. धातुओं के द्वारा विभिन्न प्रकार की गृह-सज्जा की सामग्री निर्मित होती है।
3. धातुओं के माध्यम से भवन निर्माण के उपकरण बनते हैं।
4. धातुओं से संगीत सम्बन्धी उपकरणों का निर्माण होता है।

7. मिट्टी का कार्य–प्राचीन काल से ही मिट्टी का कार्य होता रहा है। मिट्टी वर्तमान समय की मूलभूत आवश्यकता है। इसके अभाव में कोई भी उद्योग विकसित नहीं हो सकता। कृषि कार्य, पशुपालन जैसे कार्य इसी पर आधारित हैं। सभ्यता के विकास के साथ–साथ मानव ने मिट्टी से बर्तन एवं भवन निर्माण जैसे कार्य प्रारम्भ किये। अतः आधुनिक काल में मिट्टी के कार्य का महत्व अत्यधिक बढ़ गया है। आज मिट्टी से विभिन्न प्रकार के खिलौने एवं मूर्तियों को बनाकर उन पर सुन्दर चित्रकारी करके इसे जीविकोपार्जन का साधन बना लिया है। इसीलिए प्राथमिक एवं उच्च स्तर की कक्षाओं में मिट्टी के कार्य का ज्ञान प्रदान किया जाता है।

उपयोगिता–मिट्टी के कार्य की उपयोगिता निम्न प्रकार है–

1. इस कार्य में बालक मानसिक एवं शारीरिक रूप से क्रियाशील रहते हैं।
2. सृजनात्मक शक्ति का विकास होता है।
3. इस कार्य के माध्यम से अभिव्यक्ति क्षमता का विकास होता है।
4. सौन्दर्यात्मक भावनाओं का विकास एवं ज्ञानेन्द्रियों का प्रशिक्षण होता है।
5. इस कार्य के द्वारा बालकों को जीविकोपार्जन का साधन प्राप्त होता है।

8. गृहशिल्प–भोजन निर्माण तथा गृहशिल्प का विकास मानव सभ्यता के विकास के साथ ही माना जाता है। गृहशिल्प के अन्तर्गत खाना बनाना, कताई–बुनाई, सजावट एवं सामाजिक व्यवहार जैसी विधाएँ आती हैं। प्रत्येक महिला को गृहशिल्प का ज्ञान होना आवश्यक है। इस कला के माध्यम से स्त्रियाँ अपने परिवार व समुदाय को प्रसन्न रखती हैं।

उपयोगिता–गृहशिल्प की उपयोगिता निम्नलिखित प्रकार है–

1. इस शिल्प के माध्यम से घर को सजाया जाता है।
2. घर के सदस्यों की देखभाल में सहायता मिलती है।
3. परिवार के सदस्यों का स्वास्थ्य अच्छा रखा जा सकता है।
4. इस शिल्प में विभिन्न प्रकार के रोगों एवं उनकी रोकथाम के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।

समाजोपयोगी उत्पादक कार्य एवं समाज-सेवा शिक्षा के फलस्वरूप बालकों में अपना काम स्वयं करने की आदत पैदा हो जाती है। इसके फलस्वरूप वह छोटे-छोटे कार्य, जैसे—सफाई करना, अपने फटे कपड़ों की मरम्मत स्वयं करना तथा जूतों की पॉलिश करना आदि कार्यों के लिए दूसरों पर आश्रित नहीं रहते हैं। इस पाठ्यक्रम के अध्ययन के उपरान्त छात्रों में अनेक प्रकार की दक्षताएँ तथा क्षमताएँ विकसित हो जाती हैं और वे शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् इधर-उधर नहीं भटकते अपितु कार्य कौशल के आधार पर स्वयं आजीविका अर्जित कर लेते हैं।

व्यवसाय के प्रति निष्ठा उत्पन्न करने के लिए कोठारी आयोग ने भी कार्यानुभव की संकल्पना प्रस्तुत की है। कार्यानुभव का मूल आधार है—विद्यार्जन तथा धनार्जन की प्रक्रिया को साथ-साथ सम्पन्न करना। वास्तविकता यह है कि कार्यानुभव से श्रम तथा कर्त्तव्य के प्रति निष्ठा का दृष्टिकोण विकसित होता है, जिससे उन्हें वयस्क होने पर जीवनयापन में सहायता मिलती है।

शिक्षा का अभिप्राय बालक का सर्वांगीण विकास करना है और उसे जीवन में आने वाली चुनौतियों का सफलता से सामना करने के लिए तैयार करना है। बालक के सर्वांगीण विकास को पाँच खण्डों में विभक्त किया जा सकता है–

(1) श्रम, (2) स्वास्थ्य, (3) सम्प्रेषण, (4) कल्पनाशीलता, (5) स्नेह और दया।

श्रम को पुनः तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है–

(1) शारीरिक कौशल एवं उत्पादकता का विकास।

(2) सामाजिकता।

(3) समाज सेवा।

उपर्युक्त वर्णित लक्ष्यों की पूर्ति के लिये विद्यालयी शिक्षा पाठ्यक्रम में समाजोपयोगी उत्पादक कार्य एवं समाज सेवा को एक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इस पर आधारित पाठ्यक्रम से बालक में श्रम के प्रति निष्ठा एवं रुचि उत्पन्न होने के साथ-साथ स्वावलम्बन, सहयोग, जिज्ञासा, अध्यवसाय, सामूहिकता की भावना एवं कर्मनिष्ठा जैसे मूल्यों का विकास हो सकेगा।

परिभाषा–"समाजोपयोगी उत्पादक कार्य बालक और समुदाय की आवश्यकतापूर्ति से सम्बन्धित अर्थपूर्ण कार्य है, जिसका परिणाम वस्तु निर्माण या ऐसे सेवा कार्य से है, जो समुदाय के लिए उपयोगी सिद्ध हो। यह मात्र यान्त्रिक ढंग से ही न किया जाये वरन् इसमें योजना निर्माण, विश्लेषण एवं विस्तृत तैयारी को भी समाविष्ट किया जाये।

कार्यानुभव शिक्षा के उद्देश्य–(1) छात्रों में परस्पर सहयोग की भावना का विकास करना।

(2) छात्रों में विविधतापूर्ण कार्यों को समझने की क्षमता उत्पन्न करना।

(3) छात्रों में आत्म-निर्भरता, श्रम के प्रति निष्ठा और सहयोग की भावनाओं का विकास करना।

(4) छात्रों को समाज के लिये अधिकाधिक उपयोगी बनाने के लिये प्रेरित करना और समाजोपयोगी कार्यों में योगदान देने के लिए सक्षम बनाना।

(5) छात्रों में सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना।

(6) छात्र जैसे-जैसे एक शैक्षिक स्तर से दूसरे स्तर की ओर अग्रसर हों, उन्हें उत्पादक कार्यों में सम्भावी बनने के लिए उनका मार्ग-दर्शन करना तथा उन्हें कार्य करते हुए प्रशिक्षित कर भविष्य में आजीविका हेतु तैयार करना।

(7) छात्रों की रुचि के अनुसार व्यवसाय विशेष से सम्बन्धित कार्यों में प्रारम्भिक स्तर के कार्य कराना, जिससे वे भावी जीवन में एक सक्षम नागरिक बन सकें।

(8) छात्रों में उत्पादन कार्यों के प्रति रुचि उत्पन्न करके उन्हें आर्थिक लाभ तथा समय के सदुपयोग हेतु प्रेरित करना।

(9) छात्रों को 'कार्य की दुनिया' एवं समुदाय के प्रति सेवाकार्यों से परिचित कराना एवं उनमें श्रम के प्रति आदर भाव विकसित करना।

(10) छात्रों में 'टीम वर्क' के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति, आत्म-निर्भरता, आत्म विश्वास, श्रम के प्रति निष्ठा एवं सहिष्णुता, सद्भाव जैसे मूल्यों का विकास करना।

(11) छात्रों को सर्वजन हिताय की भावना का विकास करना, जिससे कि वे समाज के उपयोगी सदस्य बनकर सामाजिक कार्यों में अपना सर्वोत्तम योगदान दे सकें।

(12) छात्रों में कार्य जगत और सामुदायिक सेवा कार्य से परिचित कराना और उनमें श्रमिकों के प्रति आदर की भावना का विकास करना।

(13) छात्रों को व्यक्तिगत एवं सामूहिक कार्य हेतु तैयार करना।

(14) छात्रों को भारतीय संस्कृति और मानवीय मूल्यों का विकास कर सम्मान करना आना।

(15) छात्रों में राष्ट्रीय भावात्मक एकता का भाव जागृत करने, सहयोग की भावना से कार्य करने तथा समाज सेवा कार्य करने की क्षमता का विकास करना।

(16) छात्रों की रुचि और क्षमता के अनुसार व्यवसाय विशेष से सम्बन्धित कार्यों में प्रारम्भिक स्तर के अनुभव एवं अभ्यास देना।

(17) प्राप्त ज्ञान से धनार्जन करने की क्षमता तथा आत्म-विश्वास बढ़ाना।

समाजोपयोगी उत्पादक कार्य विषय की विशेषताएँ
(Characteristics of Socially Productive Work)

(1) समाजोपयोगी उत्पादक कार्य एवं समाज-सेवा विषय द्वारा बालक अपने दैनिक जीवन के कार्य यथा-चाय-नाश्ता एवं खाना बनाना, कपड़े धोना, प्रेस करना, मनचाही रसोई तैयार करना एवं विद्युत् फ्यूज आदि छोटी-छोटी मरम्मत कर लेना, अपने फटे वस्त्रों की मरम्मत कर लेना तथा बटन लगाना आदि कार्य सीखकर अपनी समस्याओं का समाधान कर सकता है।

(2) कार्य करने की प्रेरणा एवं क्षमता पैदा होती है। श्रम के प्रति आस्था तथा सहयोग से कार्य करने की योग्यता का विकास होता है और अनुपयोगी सामग्री से उपयोगी सामग्री तैयार कर अपने आवास को सुसज्जित कर सकता है। वह सीखने की प्रक्रिया के साथ जोड़ता है और कार्य के सिद्धान्तों को विषयगत ज्ञान के साथ समान्वित करता है।

(3) यह शारीरिक श्रम का सम्बन्ध सामाजिक परिप्रेक्ष्य के साथ स्थापित कर 'श्रम ही पूजा है' की भावना का संचार होता है। श्रमिकों के प्रति आदर की भावना का विकास होता है। यह भाव सामाजिक परिवर्तनों के सशक्त अभिकर्त्ता के रूप में कार्य करता है और सामाजिक न्याय के राष्ट्रीय उद्देश्य को जानने में मददगार सिद्ध होता है।

(4) समाजोपयोगी उत्पादक कार्य को पाठ्यक्रम में स्थान देने से व्यावसायिक जगत के कार्य, जैसे—साबुन बनाना, दंत मंजन बनाना, शरबत, अचार तथा मुरब्बा आदि जो दैनिक जीवन हेतु उपयोगी हैं, छात्र स्वयं तैयार कर सकता है। छात्र दैनिक कार्यों में प्रयोग होने वाले यंत्र एवं उपकरण, यथा; लैम्प, चूल्हे, थर्मामीटर, जल मीटर, विद्युत् मीटर तथा लेक्टोमीटर आदि का प्रयोग करना उनका रीडिंग (प्रेक्षण) करना तथा व्यय का अनुमान लगाना आदि सीख लेता है।

(5) अन्य महत्वपूर्ण उपयोगी कार्य,—(i) घर व विद्यालय आदि का सफाई, (ii) श्रमदान, (iii) प्रदर्शनी का कार्य, (iv) प्राथमिक उपचार का ज्ञान (v) शैक्षिक भ्रमण (vi) कार्यशाला व संगोष्ठी शिविर आदि की व्यवस्था को सुचारु बनाना भी इस विषय की विशेषताओं में सम्मिलित है।

महात्मा गाँधी की बुनियादी शिक्षा
(Basic Education of Mahatma Gandhi)

सन् 1937 में आयोजित राष्ट्रीय शिक्षा कॉन्फ्रेंन्स में महात्मा गाँधी के शैक्षिक क्रियाकलापों पर आधारित एक प्रस्ताव सर्वसम्मत्ति से स्वीकार किया गया। इसे 'वर्धा प्रस्ताव' कहा जाता है। वर्धा प्रस्ताव में कहा गया कि ''यह कॉन्फ्रेंन्स सर्वसम्मति से महात्मा गाँधी के प्रस्ताव को स्वीकार करती है। विद्यालयों में शैक्षिक क्रियाकलाप, हाथ के कार्य तथा उत्पादन प्रवृत्ति को केन्द्र में रखकर संचालित किये जायें। जो भी शैक्षिक प्रशैक्षिक तथा प्रशिक्षण आदि का कार्य किये जायें वे पर्यावरण के आधार पर चयनित हस्त कौशल को केन्द्र में रखकर किये जायें।''

बेसिक या बुनियादी शिक्षा—डॉ. जाकिर हुसैन समिति ने महात्मा गाँधी के शैक्षिक विचारों को व्यावहारिक रूप दिया और इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा योजना में प्राथमिक स्तर पर (कक्षा 1 से 8 तक) बुनियादी शिक्षा को व्यवहार में लाने को सर्वसम्मति से निर्णय लिया गया।

महात्मा गाँधी ने शिक्षा में बालक के हाथ, मस्तिष्क एवं हृदय के समन्वय पर बल दिया। इसी विचार को क्रियान्वित करने के लिये बुनियादी शिक्षा में उद्योगों को महत्वपूर्ण स्थान दिया। व्यवस्था यह की गयी कि सम्पूर्ण शिक्षा ही केन्द्रीय उद्योग से समन्वित करके प्रदान की जाये। बुनियादी शिक्षा के मूल तत्व (आधार) निम्नलिखित थे–

(1) स्थानीय पर्यावरण पर आधारित उद्योग।
(2) स्थानीय समुदाय से सम्पर्क।
(3) पाठ्यचर्या का उत्पादक प्रवृत्ति एवं पर्यावरण से सहसम्बन्ध।
(4) उत्पादक प्रवृत्ति।

कोठारी आयोग और कार्यानुभव (1964-66) के अनुसार, कोठारी आयोग ने श्रम के महत्व को स्वीकार किया किन्तु बेसिक शिक्षा के स्वरूप में परिवर्तन कर उसे कार्यानुभव के रूप में प्रस्तुत किया। आयोग ने कार्यानुभव को बुनियादी शिक्षा से निम्न रूप से भिन्न बताया है–

बुनियादी शिक्षा	कार्यानुभव
(1) बुनियादी शिक्षा के पर्यावरण आधारित उद्योग सीखने पर बल था।	(1) कार्यानुभव के अन्तर्गत लिये जाने वाले कार्य वैज्ञानिक एवं तकनीकी आधार लिये हुए थे।
(2) बुनियादी शिक्षा पूर्ण रूप से उद्योग केन्द्रित थी।	(2) कार्यानुभव एक अलग शैक्षिक एवं प्रायोगिक विषय था।
(3) बुनियादी शिक्षा में चयनित उद्योग तथा प्रवृत्तियाँ ग्रामीण आधार लिये हुए होती थीं।	(3) कार्यानुभव को शहरी तथा आधुनिक आधार प्रदान किया गया।

कोठारी आयोग ने कार्यानुभव और उद्योग शिक्षा में अन्तर बताते हुए कहा कि उद्योग के अन्तर्गत एक उद्योग में विशेष पारंगत करने का लक्ष्य था, वहीं कार्यानुभव में विभिन्न कार्यों का अनुभव देने का लक्ष्य रखा गया। इसी प्रकार उद्योग में व्यवसायीकरण की शिक्षा दी जाती थी, जबकि कार्यानुभव में कार्यकारिणी एवं व्यावहारिक परिस्थितियों का ज्ञान और कौशल देना था। आयोग ने कार्यानुभव शिक्षा द्वारा छात्र को कार्य की दुनिया से जोड़ने की प्रक्रिया एवं कड़ी बताते हुए कार्यानुभव के उद्देश्य निर्धारित किये–

बेसिक या बुनियादी शिक्षा के उद्देश्य–

(1) बालकों में श्रम के प्रति निष्ठा उत्पन्न करना।
(2) अध्ययन की दुनिया एवं कार्य की दुनिया के मध्य अन्तर कम करना।
(3) युवकों को कार्य करने के अवसर प्रदान करना।
(4) बालकों द्वारा राष्ट्रीय उत्पादन में सक्रिय योगदान देना।

कार्यानुभव का स्वरूप–आयोग ने कार्यानुभव के स्वरूप को विभिन्न स्तरों पर निर्धारित करते हुए बताया है कि पूर्व प्राथमिक स्तर पर सामान्य हस्त कार्य को रूप में सृजनात्मक एवं रचनात्मक क्रियाएँ, उच्च प्राथमिक स्तर पर सामान्य उद्योग के रूप में, माध्यमिक स्तर पर सामान्य कार्यशाला–कार्य प्रशिक्षण के रूप में तथा उच्च माध्यमिक स्तर पर कार्यशाला–कार्य के रूप में निर्धारित किया। इन उद्देश्यों के निर्धारण के साथ–साथ आयोग ने बुनियादी शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्तों को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना तथा बताया कि वे सभी स्तरों की शिक्षा व्यवस्था का मार्गदर्शन करने तथा स्वरूप निर्धारण हेतु उपयुक्त होंगे।

सीखो–कमाओ योजना–विद्यालय के निर्धन तथा जरूरतमन्द बालक, जो किसी विशेष कार्य में दक्षता प्राप्त होते हैं, ये अतिरिक्त समय (एक–दो घण्टा) में कार्य करके उत्पादन करें। इस प्रकार से निर्मित वस्तुओं का विक्रय करने पर जो लाभांश प्राप्त हो, उस लाभांश में उन छात्रों को लाभांश का भागीदार बनाया गया। इस प्रकार की क्रियाओं को सीखो–कमाओ योजना कहा गया। इस प्रकार प्राप्त राशि से जरूरतमन्द बालक अपनी नित्य उपयोग की आवश्यकता की पूर्ति के साथ अपने अध्ययन को सुचारु रूप से चला सकें। इस प्रकार की व्यवस्था 'सीखो–कमाओ' योजना के अन्तर्गत की गयी

व्यवस्थाएँ हैं। S.U.P.W. कार्यानुभव दोनों ही प्रणालियों में शारीरिक श्रम (हस्त कौशल) को शिक्षा का आधार बनाया गया है। साथ ही दोनों ही प्रणालियों में किसी स्थानीय आवश्यकता वाले उद्योग को रखकर छात्रों को जीवनयापन के योग्य बनाने का प्रयास किया जाता है।

असमानताएँ

समाजोपयोगी उत्पादक कार्य	सीखो-कमाओ
(1) इसमें छात्रों द्वारा उत्पादित सामग्री की बिक्री आवश्यक नहीं है क्योंकि इसमें श्रम करने की आदत विकसित की जाती है।	(1) इसमें छात्रों द्वारा उत्पादित सामग्री की बिक्री की जाती है तथा बिक्री से प्राप्त लाभांश को छात्रों में वितरित किया जाता है।
(2) इसमें स्वावलम्बन के गुण का विकास कर छात्रों को व्यक्तिगत और सामुदायिक हित में कार्यों को करने के योग्य बनाया जाता है।	(2) इसमें छात्रों को व्यावसायिक कौशल सिखाया जाता है।

व्यावसायिक शिक्षा एवं सीखो-कमाओ योजना में अन्तर

व्यावसायिक शिक्षा	सीखो-कमाओ योजना
(1) व्यावसायिक शिक्षा के अन्तर्गत छात्रों को कुछ चुने हुए व्यवसायों को करने की जानकारी दी जाती है।	(1) सीखो-कमाओ योजना में छात्रों को स्थानीय वस्तुओं का उत्पादन करना सिखाया जाता है।
(2) इसमें कौशल अर्जन के समय छात्रों को किसी प्रकार का आर्थिक लाभ नहीं होता है।	(2) इसमें उत्पादित सामग्री की बिक्री से प्राप्त लाभांश छात्रों में बाँट दिया जाता है।

सीखो-कमाओ योजना तथा बुनियादी शिक्षा में सामनताएँ एवं असमानताएँ

समानताएँ	असमानताएँ
(1) दोनों ही पद्धतियों में उत्पादन कौशल की शिक्षा को बौद्धिक विकास का साधन माना गया है।	(1) समाजोपयोगी उत्पादक कार्य के अन्तर्गत छात्रों को कार्य जगत एवं समाज में प्रचलित व्यवसायों से परिचित कराना, परिश्रम के कार्यों में प्रवृत्त करना तथा उन्हें शिक्षा ग्रहण करते हुए कमाने योग्य बनाना है परन्तु बुनियादी शिक्षा का आधार बुनियादी उद्योगों को माना गया था और उसका उद्देश्य था कि शिक्षा का कार्य मात्र मानसिक प्रशिक्षण देना ही नहीं वरन् उसका आधार हाथ एवं ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से शिक्षा का प्रारम्भ करके उसे मस्तिष्क तक पहुँचाना है।
(2) दोनों ही पद्धतियों में अनुभव द्वारा सीखने तथा सामान्य रूप से सीखने की प्रक्रिया में एकीकरण एवं समन्वय पर बल दिया गया है।	(2) बुनियादी शिक्षा के अन्तर्गत समाज-कल्याण का कार्य किया गया और उसे समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने का सशक्त माध्यम बनाया गया, जिससे कि समाजोपयोगी उत्पादक कार्य के अन्तर्गत छात्रों को घर से दूर रहकर कठिन जीवन जीने का अभ्यास हो सके और वे व्यावहारिक अनुभवों द्वारा कुछ सीख सकें।

प्राविधिक या तकनीकी व व्यावसायिक शिक्षा का अर्थ व उद्देश्य

(Meaning and Aims of Technical and Vocational Education)

अर्थ–प्राविधिक शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा का अंग है। व्यावसायिक शिक्षा व्यक्ति को किसी कार्य या व्यवसाय से सम्बन्धित प्राविधिक प्रशिक्षण प्रदान करती है ताकि वह उस व्यवसाय के द्वारा अपनी जीविका का उपार्जन कर सके। अतः हम व्यावसायिक शिक्षा के अर्थ को **'सामाजिक विज्ञानों के विश्वकोश'** के अनुसार, इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं–"व्यापक रूप में व्यावसायिक शिक्षा के अन्तर्गत उस सब प्रकार की शिक्षा को सम्मिलित किया जा सकता है, जिसके द्वारा किसी व्यक्ति को जीविकोपार्जन के लिए प्रशिक्षण प्राप्त हो सकता है।"

उद्देश्य–यूनेस्को (UNESCO) के बारहवें अधिवेशन में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के अधोलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये–

1. प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के समस्त कार्यक्रमों में सामान्य, वैज्ञानिक एवं विशिष्ट विषयों में समुचित सन्तुलन होना चाहिए।

2. इस शिक्षा के समस्त कार्यक्रम तीव्र गति से विकसित होने वाले शिल्प विज्ञान की प्रकृति के अनुरूप होने चाहिए।

3. इस शिक्षा के कुछ कार्यक्रम ऐसे होने चाहिए जो शारीरिक या मानसिक दृष्टि से दोषपूर्ण व्यक्तियों के लिए उपयुक्त हों, ताकि वे समाज एवं उनके व्यवसायों में समायोजित हो जायें।

4. इस शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर शारीरिक कार्य के महत्व की भावना होनी चाहिए और उत्पादन की विधियों में इस महत्व को स्वीकार किया जाना चाहिए।

5. इस शिक्षा का लक्ष्य केवल आधारभूत कौशल का विकास करना ही नहीं होना चाहिए वरन् आधारभूत वैज्ञानिक ज्ञान प्रदान करना भी होना चाहिए।

6. इस शिक्षा का संगठन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि व्यक्ति अपनी शिक्षा को उस समय तक जारी रख सके, जब तक उसकी कुशलताओं का पूर्णतम सम्भव विकास न हो जाये।

प्राविधिक या तकनीकी व व्यावसायिक शिक्षा की आवश्यकता व महत्व (Need and Importance of Technical and Vocational Education)

भारतीय शिक्षा विशारद **प्रो. हुमायूँ कबीर** ने अपने एक लेख में संसार के कुछ प्रमुख देशों के उदाहरण देकर प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के महत्व एवं आवश्यकता को प्रमाणित किया है। हम उक्त लेख में निहित उनके विचारों को सार रूप में अक्षरबद्ध कर रहे हैं, यथा—**प्रो. कबीर** का मत है कि किसी देश अथवा राष्ट्र की समुन्नति एवं सुदृढ़ता का आधार विज्ञान एवं प्राविधिक विषयों की शिक्षा है। यदि किसी देश में इस शिक्षा की सफल एवं समुचित व्यवस्था है और यदि यह शिक्षा प्रगति की ओर अग्रसर हो रही है, तो उस देश की प्रगति भी अवश्यम्भावी है। संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत रूस, जर्मनी और जापान इसके सजीव उदाहरण हैं। आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व संयुक्त राज्य अमेरिका एक पिछड़ा हुआ और अविकसित देश था, परन्तु प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा का उत्कृष्ट आयोजन एवं उत्तरोत्तर उत्थान करने के कारण आज वह संसार का सबसे धनी देश है और अनेक देश उसके ऋणभार से दबे हुए हैं। सन् 1918 में जब रूस में जारशाही का जनाजा निकालकर, गणतन्त्र को प्रतिष्ठित किया गया, तब उसका स्थान संसार के निर्बल एवं अप्रगतिशील देशों में था, किन्तु प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा का सुन्दर नियोजन करने के कारण आज उसका स्थान संसार के सबल एवं सुदृढ़ देशों में है। द्वितीय विश्वयुद्ध ने जर्मनी और जापान को जर्जर बनाकर उसकी अर्थव्यवस्था को तहस-नहस कर दिया, पर उन्होंने प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के विकास के लिए जी-जान से मेहनत करके अपनी पूर्व स्थिति को बहुत-कुछ पुनः प्राप्त कर लिया है। ये उदाहरण इस बात के सप्राण प्रमाण हैं कि किसी भी देश की उन्नति में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा का कितना अपार महत्व है। वस्तुतः देश की उन्नति के लिए यह शिक्षा एक अनिवार्य आवश्यकता है।

प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के अतिरिक्त राष्ट्र की सम्पन्नता के दो आधार और हैं—भौतिक सम्पत्ति एवं जनशक्ति। किन्तु इन दोनों आधारों को सहायक आधारों में स्थान दिया गया है। भौतिक सम्पत्ति के अन्तर्गत कच्चा माल और खनिज पदार्थ सम्मिलित हैं। यदि देश में भौतिक सम्पत्ति एवं जनशक्ति का अभाव नहीं है तो देश सम्पन्न हो सकता है, पर यह आवश्यक नहीं है। आवश्यक यह है कि भौतिक सम्पत्ति का प्रयोग करने वाली जनशक्ति प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के ज्ञान से युक्त हो। यदि जनशक्ति इस ज्ञान से रिक्त है, तो भौतिक सम्पत्ति की प्रचुरता के बावजूद भी देश अविकसित एवं अप्रगतिशील दशा में रहता है।

भारत के विषय में यह बात अक्षरशः सत्य है। यहाँ भौतिक सम्पत्ति का बाहुल्य है। यहाँ की धरती—कपास, पटसन, कच्चा रेशम आदि के उत्पादन के लिए जगत प्रसिद्ध है। इस धरती के गर्भ में तेल, ताँबा, लोहा, कोयला आदि खनिज पदार्थों के अपार भण्डार छिपे पड़े हैं। परंतु प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के अभाव के कारण भारतवासी कच्चे माल और खनिज पदार्थों का न तो उपयुक्त उपभोग कर सके हैं और न कर रहे हैं।

भारत के विपरीत, जापान एक ऐसा देश है, जिसे भौतिक सम्पत्ति की दृष्टि से सम्पन्न नहीं माना जाता है। उसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कच्चे माल और खनिज पदार्थों का अन्य देशों से आयात करना पड़ता है, परन्तु वहाँ प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की इतनी उत्तम व्यवस्था

है कि वह जन-जन को उपलब्ध है। यही कारण है कि वहाँ के निवासियों ने भौतिक सम्पत्ति के अभाव में भी अपने देश को संसार के प्रमुख औद्योगिक देशों के बराबर लाकर खड़ा कर दिया है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि देश की समृद्धि के लिए सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि उसकी जनशक्ति वैज्ञानिक, प्राविधिक एवं व्यावसायिक ज्ञान में दक्ष हो। तभी उस देश की जनता भौतिक सम्पत्ति का सर्वोत्तम उपयोग करके अपने देश को उन्नतिशील देशों की श्रेणी में सुनिश्चित स्थान प्रदान कर सकती है। इस ज्ञान के महत्व एवं आवश्यकता से सुपरिचित होने के कारण हमारी सरकार ने 1958 के अपने **'विज्ञान नीति प्रस्ताव'** में भारत के औद्योगिक विकास के लिए निम्नांकित नीति निर्धारित की है—"राष्ट्र की सम्पदा एवं सम्पन्नता औद्योगीकरण के द्वारा उसके मानव एवं भौतिक साधनों समुचित उपयोग पर आधारित है। औद्योगीकरण के लिए मानव साधनों का उपयोग विज्ञान की शिक्षा और प्राविधिक कुशलताओं में प्रशिक्षण की मांग करता है। भारत की जनशक्ति के विशाल साधन प्रशिक्षित एवं शिक्षित होकर ही आधुनिक संसार में उपयोगी हो सकते हैं।"

पाठ्यक्रम में व्यक्ति तथा समाज का दृष्टिकोण
(Visioning Human beings and Just Society in Curriculum)

पाठ्यचर्या विद्यालय की 'शिक्षा' व्यवस्था का केन्द्रबिन्दु है। विद्यालय में उपलब्ध सभी संसाधन जैसे—विद्यालय भवन, उपकरण, पुस्तकालय की पुस्तकें तथा अन्य शिक्षण सामग्री का एकमात्र उद्देश्य है—पाठ्यचर्या के प्रभावी क्रियान्वयन में सहयोग देना, कक्षा की समस्त क्रियाएँ, पाठ्य-सहगामी कार्यकलाप तथा मूल्यांकन की समस्त प्रक्रिया विद्यालयी पाठ्यचर्या के परिणामस्वरूप ही नियोजित किये जाते हैं।

प्रत्येक सभ्य समाज अपनी युवा पीढ़ी के समाजीकरण हेतु एक निश्चित शैक्षिक कार्यक्रम का नियोजन करता है, जिसका क्रियान्वयन विद्यालय के माध्यम से किया जाता है। इस प्रक्रिया में किन बातों का समावेश हो तथा इन्हें शैक्षिक व्यवहार और क्रियाओं के रूप में कैसे परिवर्तित किया जाये, इस विषय पर अनेक मतभेद हैं। **अरस्तू** ने कहा था कि "जो स्थितियाँ हैं—मानव समाज इनके शिक्षण के प्रति न तो एकमत है और न शिक्षण के लिए अपनाये जाने वाले साधनों के प्रति ही।" वर्तमान समय में भी यह मतभेद विद्यमान है कि पाठ्यचर्या में क्या समाहित किया जाये ? इसे कैसे संगठित तथा क्रमबद्ध करके पढ़ाया जाये ? इस विषय में मतभेद है कि पाठ्यचर्या की संकल्पना तथा इसके विकास के प्रति हमारे दृष्टिकोण में एकरूपता नहीं आ सकी है।

'पाठ्यचर्या' शब्द का प्रयोग अनेक रूपों में किया गया है। सामान्य रूप से इसका आशय निम्न प्रकार है—

(1) विद्यालय में अध्ययन के लिए निर्दिष्ट पाठ्यक्रम तथा अन्य सम्बन्धित सामग्री।

(2) विद्यार्थी को पढ़ाई जाने वाली विषय-सामग्री।

(3) किसी विद्यालय में निर्दिष्ट विषय का पाठ्यक्रम।

(4) विद्यालय में छात्रों को दिये जाने वाले नियोजित अधिगम अनुभवों का सम्मिलित रूप।

साधारण रूप में कहा जा सकता है कि "पाठ्यक्रम छात्रों में उन सभी अनुभवों के रूप में परिभाषित किया जाता है जिनका दायित्व विद्यालय अपने ऊपर लेता है। इस रूप में पाठ्यक्रम का तात्पर्य उन क्रमिक कार्यों से है, जो इन अनुभवों से पूर्व, इनके होने के साथ-साथ तथा इन अनुभवों के बाद आयोजित किये जाते हैं।" इन कार्यों को निम्नलिखित आठ वर्गों में समाहित किया जा सकता है—

(1) लक्ष्यों एवं उद्देश्यों का निर्धारण।

(2) बालकों के संज्ञानात्मक विकास का पोषण।

(3) बालकों के मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य का संवर्द्धन।

(4) अधिगम हेतु व्यवस्था।

(5) शैक्षणिक स्रोतों का उपयोग।

(6) छात्रों का व्यक्तिगत बोध तथा उसके अनुरूप शिक्षण व्यवस्था।

(7) समस्त कार्यक्रमों एवं बालकों के कार्यों का मूल्यांकन।

(8) नवीन प्रवृत्तियों का साहचर्य।

मनुष्यों को समाज में अपनाये जाने वाले पाठ्यक्रम के प्रति एक अलग नजरिया देखने को मिलता है। यह नजरिया सामाजिक कारकों से सम्बन्धित होता है।

मानव तथा समाज का नजरिया
(Vision of Human beings and Society)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहकर ही अपना जीवन व्यतीत करता है जिसके कारण उसके जीवन का कोई भी पक्ष समाज में प्रभावित हुए बिना नहीं रहता है। जहाँ तक शिक्षा का सम्बन्ध है, उसका तो प्रमुख लक्ष्य ही बालक का समाजीकरण करना अर्थात् उसे सामाजिक जीवन के लिए तैयार करने तथा समुचित ढंग से समायोजित होने में सहायता प्रदान करना होता है। इससे स्पष्ट है कि पाठ्यक्रम का विकास सामाजिक पृष्ठभूमि और आकांक्षाओं के बीच ही होता है। किसी भी पाठ्यक्रम का विवेचन उस सामाजिक, आर्थिक स्थिति से अलग करके नहीं किया जा सकता है, जिसमें वह कार्यान्वित होता है। इसीलिए कुछ विद्वान पाठ्यक्रम को एक सामाजिक प्रणाली कहना ठीक समझते हैं जिसे समाजशास्त्र की सहायता से भी समझा जा सकता है। समाजशास्त्री पाठ्यक्रम का मूल्यांकन भी करता है तथा उसके क्रियान्वयन के मार्ग में आने वाली बाधाओं के निदान में सहायता प्रदान करता है। इस प्रकार समाजशास्त्र हमें इस तथ्य का बोध कराता है कि पाठ्यक्रम वह साधन है जिसके माध्यम से विद्यालय सामाजिक लक्ष्यों तक पहुँचने का प्रयास करते हैं। अतः पाठ्यक्रम का केवल शैक्षिक ही नहीं, सामाजिक महत्व भी है।

शिक्षा का सामान्य उद्देश्य बालक के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाना है। चूँकि सामाजिक आकांक्षाओं से ही दिशा अपेक्षित या वांछित होती है। अतः पाठ्यक्रम जहाँ एक ओर व्यक्ति से सम्बन्धित होता है वहीं दूसरी ओर समाज से भी जुड़ा होता है। इन्हें पाठ्यक्रम का मनोवैज्ञानिक और सामाजिक पक्ष भी कहा जाता है। ये दोनों पक्ष एक-दूसरे से इतने जुड़े हुए होते हैं कि इन्हें अलग नहीं किया जा सकता है। मनोविज्ञान के अन्तर्गत जिस मानव व्यवहार का अध्ययन किया जाता है वह अनिवार्य रूप से सामाजिक अन्तःक्रिया का ही परिणाम होता है। मानव व्यवहार या तो दूसरों के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क से प्राप्त किया जाता है या फिर पूर्व सम्पर्क-सूत्रों से प्रभावित होकर सम्पन्न होता है। कुछ व्यवहार अवश्य ऐसे होते हैं जो दूसरों से सम्बन्धित नहीं होते तथा बिना अन्तःक्रिया के ही प्राप्त होते हैं, किन्तु ऐसे व्यवहारों की संख्या अति न्यून होती है तथा वे कुल व्यवहारों का अभिन्न अंश होते हैं।

हम जो कुछ भी सीखते हैं, वह प्रायः शिक्षकों और शिक्षार्थियों के बीच विभिन्न स्थलों, जैसे—कक्षा, खेल का मैदान, परिचर्या, सभा आदि में हुई प्रत्यक्ष अन्तःक्रिया का परिणाम होता है। इस प्रकार लगभग पूर्ण शिक्षा सामाजिक प्रवृत्तियों से समृद्ध रहती है। विद्यालय में अथवा विद्यालय से बाहर क्या पढ़ाया जाना है और क्या नहीं, यह सब सामाजिक सन्दर्भ में ही निर्धारित किया जाता है। इस प्रकार शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है। समाजशास्त्री **ब्रुक ओवर** के अनुसार, शिक्षा समाजीकरण का पर्याय है। **माग्रेट मीड** ने शिक्षा को ऐसी सांस्कृतिक प्रक्रिया माना है जिसके द्वारा प्रत्येक शिशु मानव समाज का सदस्य बनता है।

इस प्रकार जैसा कि पहले भी उल्लेख किया जा चुका है, शिक्षा के आधारभूत प्रश्नों क्या, क्यों, कैसे, किसे और कब का उत्तर पाने के लिए पाठ्यक्रम नियोजकों को समाज की प्रकृति, उसके मूल तथा शाश्वत मूल्यों को जानना एवं समझना आवश्यक होता है तथा इनमें होने वाले परिवर्तनों पर भी ध्यान केन्द्रित करना होता है। अतः वर्तमान समाज के साथ-साथ उसके भूत एवं भविष्य को भी दृष्टि में रखना होता है। इस प्रकार शिक्षा तथा विद्यालय के कार्यक्रमों पर सामाजिक संस्थाओं तथा सामाजिक शक्तियों के प्रभाव ही पाठ्यक्रम के सामाजिक आधार होते हैं।